Date :

Chapter - 3

: तृतीय अध्याय :

: पात्र-निर्माण में भाषा का योग :

:: तृतीय अध्याय ::

: पात्र-निरूपण तथा परिवेश-निर्माण में भाषा का योग :

प्रास्ताविक :

उपन्यास गद्य की विधा है और पूर्ववर्ती अध्यायों में अनेकशः कहा गया है कि उपन्यास में प्रायः बोलचाल की भाषा का प्रयोग होता है। लेखकीय भाषा का प्रयोग तो वर्णन, विवरण तथा विश्लेषण में होता है, परन्तु जहां भी कोई पात्र बात करता है, वह अपनी बोली-ठोली और लहजे में करता है। अतः पात्र के निर्माण में भाषा की महती भूमिका होती है। यदि पात्र के निरूपण में उसके अनुरूप भाषा पर ध्यान नहीं दिया गया, तो वह पात्र अवास्तविक और

अस्वाभाविक लगेगा । भाषा तो मिट्टी है । जैसे अलग-अलग प्रकार के खिलौनों और मूर्तियों के लिए अलग-अलग किस्म की मिट्टी चाहिए ; ठीक उसी तरह अलग-अलग प्रकार के पात्रों के लिए भी अलग-अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है । भाषा व्यक्ति के चरित्र पर प्रकाश डालती है । पात्र शिक्षित-अशिक्षित , ग्रामीण-कस्बाई- नगरीय -महा-नगरीय होते है और उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा भी उसके अनुरूप होती है । ठीक उसी तरह परिवेश या वातावरण भी कई किस्म के होते हैं । समसामयिक तथा समकालीन विषयों को लेकर जो लेखक उपन्यास लिखते हैं , उनके यहाँ कालगत परिवेश की बात नहीं होती है , अन्यथा ऐतिहासिक तथा पौराणिक उपन्यासों में तो कालगत परिवेश तथा उसके अनुरूप भाषा का प्रयोग करना पड़ता है । शैलेश मटियानी के उपन्यासों में हमें कई प्रकार का परिवेश मिलता है । प्रस्तुत अध्याय में हमारे अध्ययन के केन्द्र में ये दो मुद्दे रहेंगे ।

पात्र-निरूपण में भाषा का योग :

उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है , अतः कथावस्तु या कथानक उसका एक प्रमुख तत्त्व है , इसमें दो मत नहीं हो सकते । शिशिर बंदोपाध्याय ने इस कथावस्तु को उपन्यास का "बेक-बोन" कहा है ।[1] कुछ लोग कथावस्तु को उपन्यास का "स्केलेटन" (अस्थिपिंजर) कहते हैं , क्योंकि उसके आधार पर ही उपन्यास खड़ा होता है । यदि कथानक को हम उपन्यास का अस्थिपिंजर मान लें तो पात्र उसके ज्ञानतंतु होंगे । कथा होगी तो पात्र आयेंगे ही , क्योंकि बिना पात्रों के कथा किसकी रहेगी ? अतः ये दोनों परस्पराश्रित तत्त्व हैं । उपन्यास के पात्र सजीव , प्राणवंत, वास्तविक एवं रोचक होने चाहिए । उपन्यास के पात्रों में "प्रोबेबिलिटी" का गुण होना ही चाहिए , क्योंकि तभी उपन्यास की विश्वसनीयता बढ़ेगी । उपन्यास के पात्रों को देखकर-पढ़कर यह महसूस होना परम आवश्यक है कि ये पात्र हमारी अपनी दुनिया के लोगों जैसे हैं । कदाचित इसीलिए ई. एम. फारर्स्टर ने उपन्यास के पात्रों के लिए "पिपल" शब्द का प्रयोग किया था ।[2] प्रसिद्ध आंग्ल आलोचक राल्फ फोक्स ने भी अपने औपन्यासिक

आलोचनात्मक ग्रन्थ का नामकरण किया है -- " नावेल एण्ड द पिपल " । यह शीर्षक देने के पीछे भी उसका यही आशय रहा है कि उपन्यास के पात्र हमें अपने समाज के "लोग" जैसे लगें । उसने तो एक कदम आगे बढ़कर उपन्यास की भाषा को भी "मानव-जीवन का गद्य " कहा है । उपन्यास के पात्र अपने समाज, अपनी जाति या "टोली" , अपने परिवेश की भाषा को लेकर अवतरित होते हैं । इसके अलावा कई बार देखा गया है कि कोई व्यक्ति अपनी भाषा में किसी शब्द-विशेष का बारंबार प्रयोग करता है । इसे "तकिया-कलाम" कहा जाता है । मैं हमारे तरफ के एक काका को जानता हूं जो "बिनती" शब्द का प्रयोग कई-कई रूप में करते हैं । "बिनती" शब्द का वास्तविक अर्थ तो प्रार्थना या निवेदन होता है , जिसे अंग्रेजी में "रीक्वेस्ट" कहा जाता है । परन्तु वे काका "बिनती" शब्द के इस वास्तविक अर्थ के अतिरिक्त उसका प्रयोग अन्य कई अर्थों में भी करते हैं । यथा - कोई काम मुश्किल होगा तो वे कहेंगे -- " एनी आपणे कोई विन्ती करीशुं . " अर्थात् उसका कोई उपाय निकालेंगे , कई बार रीत या पद्धति के लिए वे कहेंगे -- " एनी विन्ती एवी छे के एमां तमारे थोडुं तेल नाखवुं जोइए" अर्थात् उसकी पद्धति ऐसी है कि उसमें तुम्हें तेल डालना चाहिए । "बिनती" शब्द के इतने ज्यादा प्रयोग के कारण गांव में उनका नाम ही "विन्ती" काका हो गया है । इसी तरह एक भाई हैं जो व्यवस्था के लिए "निज़ाम" शब्द का प्रयोग करते हैं । जैसे - "पैसों का निज़ाम मैंने कर दिया है , उसकी आप फिकर न करें । " कहने का अभिप्राय यह कि पात्र अपनी भाषा को लेकर आता है और वह भाषा ही उसे एक व्यक्तित्व प्रदान करती है । अतः यथार्थ पात्र-सृष्टि में भाषा के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है । पात्र की भाषा ही उसके चरित्र को व्याख्यायित करती है । मनुष्य का चरित्र एक "आइसबर्ग" की तरह होता है । जब वह बोलता है , तब उस आइसबर्ग का कुछ हिस्सा दृष्टिगोचर होने लगता है । एक "सोरठी दोहे" में कहा गया है -- " कोयलडी ने काग , वाने वरताये नहीं । एनो जीभलडीए जवाब , साचुं सोरठियो भणे ।। " अर्थात्

कोयल और कौए का "वान" अर्थात् वर्ण या रंग तो एक एक ही होता है, अतः उनकी पहचान मुश्किल हो जाती है, परन्तु जब वे बोलते हैं, तब उनकी आवाज़ से यह पहचान होती है कि कौन कोयल है और कौन कौआ। कदाचित् इसीलिए श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास "राग दरबारी" में कहा है कि जो आदमी कम बोलता है वह कम मूर्ख बनता है। कालिदास के सम्बन्ध में जो किंवदंति प्रसिद्ध है उससे भी यही प्रमाणित होता है कि वह अपनी पत्नी-राजकुमारी को मूर्ख बनाने में तब तक कारगर होता है, जब तक उसका मौन-व्रत §1§ पूरा नहीं होता है। उसके बाद राजकुमारी को ज्ञात हो जाता है कि वह जिसे पंडित समझ रही थी, वह मूर्ख ही नहीं, अपितु महामूर्ख है।

प्राथमिक शिक्षा के दरमियान हिन्दी पाठ्य-पुस्तक में एक कहानी पढ़ने का याद है, जिसमें एक साधु महाराज जो प्रज्ञाचक्षु हैं, अन्ध हैं, राजा मंत्री और सेवक को पहचान लेते हैं। जब इन तीनों को ज्ञात होता है कि वे साधु महाराज तो अन्ध थे, तब उन्हें आश्चर्य होता है। वे अपनी जिज्ञासा को शान्त करने हेतु उनके पास जाते हैं। तब वे साधु महाराज कहते हैं कि यह तो बड़ा सरल है। मैंने आप तीनों की भाषा से अनुमान लगाया था कि राजा हो सकता है, कौन मंत्री और कौन सेवक।

उसी तरह की एक कथा मैंने मेरे मार्गदर्शक के मुंह से सुनी थी। पंचमहाल तरफ का एक बनिया एक भिलनी को लेकर मुंबई भाग जाता है। मुंबई जाकर वह उससे विवाह कर लेता है। उसके बाद उसका भाग्य कुछ ऐसा फलता है कि वह एक बहुत बड़ा सेठ बन जाता है। बरसों बाद उसकी तरफ के तीन-चार व्यापारी उस सेठ को मुंबई में मिलते हैं। अपनी तरफ के लोगों से मिलकर सेठ को बड़ी प्रसन्नता होती है। वह उनको अपने यहां भोजन का न्यौता देता है। भोजन कराते समय सेठानी के मुंह से अकस्मात् निकल जाता है — " आवड़ी कूतरांना कान जेवडी रोटली मां तो शुं छे ? खवाई जशे। " सेठानी बाकी सारे

शब्द तो करीने से बोल जाती है, पर रोटी की तुलना वह जो "कुत्ते के कान" से करती है, उससे उन लोगों के मन में शंका के बीज पड़ जाते हैं और वे उसकी तह तक जाकर पता कर लेते हैं कि वह सेठानी मूलतः उनके तरफ की कोई "भीलनी" है। अभिप्राय यह कि कोई लाख छिपाना चाहे पर उसके चरित्र की सच्चाई उसके शब्दों में कहीं-न-कहीं आ ही जाती है। अंग्रेजी में कहा गया है -- " ए मेन इज़ नोन बाय द कम्पनी ही कीप्स " --- इसको यत्किंचित परिवर्तन के साथ कहा जा सकता है -- " ए मेन आर वुमन इज़ नोन बाय द वर्ड्ज ही आर शी स्पिक्स। " अब इसका परीक्षण हम मटियानीजी की xxxxxx औपन्यासिक पात्र-सृष्टि के संदर्भ में करेंगे।

"हौलदार" उपन्यास का हौलदार डुंगरसिंह कुछ धूर्त, मक्कार और "हिपोक्रेट " प्रकार का xxxxxx व्यक्ति है। वह मैट्रिक तक पढ़ा हुआ है, अतः ग्रामीण लोगों को प्रभावित करने के लिए वह अपनी भाषा में स्थान-स्थान पर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता है। उपन्यास में डुंगरसिंह अपने काकज्यू (चाचाजी) जमनसिंह को प्रभावित करने के लिए शेखी बघारता है --" जमदूत से आठ पठान मेरी छाती पर .... पर मैंने समझ लिया, हफसर (अफसर) ने हाथ में सात जात की मशीनरी वाली रैफल थमाकर कुकमारच क्या कर दिया, बैतरनी के घाट भेज दिया है। मैंने फिर सोचा अपना बिनसना आ गया तो औरों के मुंह क्या देखना ... काकज्यू मैंने नाम लिया, जै मैया काली की, बरमा की बेटी, इन्दर की साली का, हाथ में खप्परवाली, काली कलकत्ता वाली, कि मैया आज तेरा बचन न जाय खाली ... पीठ के पुटठू (पलटनिया थैला) से निकाला हण्ड गिरनट ... धरती पर फैंका, आकाश में हाहाकार। ... पठानों का न कोई तर्पण करने वाला, न पिण्ड देनेवाला, न नामलेवा न xxxxxx काठदेवा। पर इसxxxxxx महाजुद्ध में एक पठान की गोली मेरे पांव पर भी बैठ गई। "[3]

यहाँ पर डुंगरसिंह जो भी कह रहा है उसका एक भी शब्द सत्य नहीं है, परन्तु वह अपने पिता के मित्र थोकदार जमनसिंह को प्रभावित करने के लिए यह मन-गढ़न्त झूठी कहानी गढ़ लेता है। जमनसिंह को वह बात इसीलिए करता है कि थोकदार होने के कारण उनकी बात का वजन पड़ता है और वे तुरंत प्रमाणपत्र भी दे देते हैं -- "देश जाने से बेटा और खेत जाने से बैल सुधरता है।" [4] जमनसिंह के यहाँ उनकी बड़ी बहू लछमा का चलन है, अतः अपनी खुशामद विद्या से उसे राजी करना चाहता है, जिससे उनके यहाँ वह आता-जाता रहे ताकि वक्त आने पर उनकी विधवा बहू जैंता को अपने पक्ष में कर सकता है। इस प्रकार एक साथ कई योजनाएँ उसके दिमाग में चलती हैं। उसका उपर्युक्त कथन और उसकी भाषा बिलकुल उसके चरित्र के अनुरूप हैं।

"चिट्ठीरसैन" उपन्यास के आनसिंग हरगाँव के एक प्रतिष्ठित किसान हैं। उनके दो बेटे हैं -- नाथू हवालदार और मोहनसिंग। आनसिंग की संपन्नता का राज़ भी नाथू हवालदार की फौज की नौकरी है। कुमाऊँ प्रदेश में गाँव के लोग प्रायः मैट्रिक करके फौज में भर्ती हो जाते हैं। घर में एक व्यक्ति यदि सरकारी नौकरी में होता है, तो उससे खेती-बाड़ी में भी बरकत रहती है। नाथू हवालदार अपने पिताजी आनसिंग को सलाह देते हैं कि वे मोहनसिंग को भी फौज में भर्ती करवा दें। यथा --

"बखत से भरती हो जायेगा तो मोहनिया की भी जिन्दगी बन जाएगी। अच्छा दमदार निकल गया तो तरक्की भी हो जायेगी। फौज में किसीको दरबानसिंग नेगी बनते कितना वक्त लगता है। रुतबे का रुतबा और पैसों के पैसे और कभी-कभार तराई-भाँवर के इलाके में सरकारी जमीन मिलने के भी चान्स रहेंगे। आपसे चार हाथ आगे चलूँ इतनी अभी औकात नहीं। मगर पीछे होगा यही कि कभी आपके या मोहनिया के दिमाग में मेरी बात बैठी भी, तो कहावत यही होगी कि "मौसम था तो बीज नहीं बोए, बीज बोने चले तो बखत निकल गया।" इधर मोहनिया रिक्रूटिंग आफिस में गया और उधर

भर्ती जमादार ने उमर पूछी , दांत देखे और "ओभरेज" कह दिया । ... अभी तो ब्वारी {बहू} भी सयानी नहीं हुई । साल-दो-साल में मोहनया छुट्टी पर आने लगेगा । .... भौज में अगर वक्त से भर्ती हो जाते हो , तो एक बिनीफीट ताजिन्दगी यह मिलना कि टाईम से रिटायर होके पेनशन लेके घर पे बैठो । ये तो हमारी लखनपुर की पट्टी हुई कि लोग फौज में भर्ती होने की जगह , लीसे के कनिस्तर ढोना पसंद करते हैं । उधर पिथौरागढ़ की तरफ जाइये तो कौन घर हुआ , जिसमें दो-चार फौजी नहीं ।" 5

उमर नाथू हवालदार का जो कथन है उसमें कुमाऊं प्रदेश के फौजी लोगों की भाषा और मानसिकता के दर्शन होते हैं । "चानस" रिकूटिंग " , "ओभरेज" , "बिनीफीट" आदि शब्दों का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि वहां के लोग बीच-बीच में इस प्रकार के अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं । "चार हाथ आगे चलना " मुहावरा है । वहां के लोग अपनी बातों में कहावत - मुहावरों का भरपूर प्रयोग करते हैं और कई बार तो नयी कहावत बना भी लेते हैं । कई बार वे अंग्रेजी के शब्दों को अपनी लोकल भाषा के हिसाब से ढाल लेते हैं , जैसे — " ओवर एज का ओभरेज " । नाथू हवालदार की बातों से उनके चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है । उनकी वैचारिक परिपक्वता , परिवार-प्रतिबद्धता , अपने छोटे भाई की चिन्ता और दायित्व-बोध ये सारी चीजें उक्त कथन में झलकती हैं ।

"चौथी मुट्ठी " उपन्यास में लेखक कौशिला और मोतिमा मस्तानी नामक दो स्त्री-चरित्रों को उभारता है । इन दोनों पात्रों को लेखक की पूरी संवेदना मिली है । इसके बारे में मटियानीजी खुद कहते हैं — जिस तरह माता-पिता अपनी संतान को पोसते हैं , ठीक उसी तरह पात्रों के द्वारा साहित्यकार अपनी मानस-संतति का

पोषण करता है । "6 कौंशिला और मोतिमा दोनों को समाज ने बुरी तरह से झिंझोड़ा है । दोनों त्रस्त और पीड़ित और वंचित । कौंशिला अपने ससुरालवालों के त्रास से पीड़ित है और मोतिमा को तो सभीने ठगा है । समाज की इस मार से मोतिमा विक्षिप्त-सी हो गई है और चिलमनंबी-सी घूमती है । वह बात-बात में गxxx गालियाँ बोलती है । एक स्थान पर मोतिमा कहती है -- " अरे साले !, क्या कौंशिला ही लगती है तेरी महतारी ? मोतिमा रांडी किसीकी कुछ नहीं लगती ? कौंशिला की व्यथा तुझे घनी लगती है ? साले !, मोतिमा का दुःख-दरद नहीं दिखता ? कौंशिला ने संतानें जनमाई हैं, मोतिमा रांडी की तो टांग ही नहीं फटी ? अरे भाई, साथ ले जाने को भी तो कोई लाज-शरमवाली बहू-बेटी चाहिए ? अधनंगी मोतिमा रांडी को साथ ले जाकर कौन अपना फजीता करवाएगा ? " 7

ऊपर जो कथन दिया है, वह लेखक अपने मन में सोचता है । यह उपन्यास संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया है । लेखक कौंशिला की कथा-व्यथा कह रहा है । उस समय उसकी चेतना पर मोतिमा हावी हो जाती है और मानो मोतिमा लेखक को उलाहना देती है । किन्तु जो दो-चार वाक्य जो वह कहती है उसमें उसका चरित्र पूरी तरह से उद्घाटित हो जाता है ।

कौंशिला को उसके सास-ससुर बहुत पीड़ित करते हैं । अतः उनके लिए घात लगाने के लिए वह "गोल्ल देवता" के मंदिर जाती है । सास, ससुर और सौत के नाम की तीन मुट्ठियां तो वह डाल देती है ; परन्तु पति गुमानसिंग के नामकी चौथी मुट्ठी अधर में ही रह जाती है । कौंशिला का पति xxxx फौज में है । छुट्टियों में वह जब आता है तब सास-ससुर उसके खूब कान भरते हैं और पति भी उस पर जुल्म गुजारने से बाज नहीं आता । कौंशिला का ससुर रतन डोंगरी कौंशिला की छाती पर मूंग दलने के लिए उसके मत्थे सौत मढ़ देता है । एक स्थान पर रतन डोंगरी कौंशिला को कहता है : " बहुत क्या बमकती

है, ससुरी ! तेरे बमकुवा चुतड़ों की चर्बी और करीम मास्टर के लमछुरे जैसी चटवा जबान को ठीक औकात पर रखने के लिए, ताजिन्दगी तेरी छाती पर मैंने सौत नहीं बिठाए रखी, तो तो नत्थनसिंग डोंगरी का नहीं, खत्तन चमार का बेटा कह देना। मेरे मुकाबले में खड़े होने वाले अच्छे-अच्छे रईसों की मैया मर गई, ससुरी तू कुतिया किस गिनती में आती है।" 8

यहां रतन डोंगरी का यह जो कथन है, उससे उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वह कौशिला का ससुर है, ससुर तो बाप की जगह होता है। पर वह अपनी बहू को मां-बहन की गालियां देता है। उसकी भाषा से उसका घमण्ड झलकता है। कोई भी संस्कारी व्यक्ति अपनी बहू के साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। वस्तुतः रतनसिंह अपनी बहुओं के साथ शारीरिक संबंध भी रखता है। तरुली रतनसिंह के कहे अनुसार चलती है। कौशिला एक सती-साध्वी स्त्री है। अतः रतनसिंह को खटकती है।

"हौलदार" उपन्यास का हरकसिंह कुमाऊं के लोकदेवता सैमराजा का डंगरिया है। हरकसिंग और गोपुली में इस डंगरिया-भंगरिया की आड़ में बहुत-कुछ चलता था। हरकसिंग ने दुरगुली पंडित्याण (पंडिताइन) के विषय में लोगों की कई बातें सुनी थीं। अतः वह भी एक दिन चला जाता है और दुरगुली से मध-मीठी रसीली बातें छेड़ देता है। उस पर दुरगुली बिफर पड़ती है --" मैल को (मैंने कहा) भैस मुश्किलों के साथ पगुरी हुई है, ऐसी तीर-पूर की बेमतलब की बातों से उखड़ जायेगी, तो मेरा दुकानों में दूध देने का हर्जा हो जाएगा। तुम्हारा क्या है? निगरगंड मोटा, नफा-न-टोटा। अ आगे आनसिंग, न पीछे पानसिंग -- टीकमसिंग की नज़र अपनी ही टांगों तक ! वाली हालत है... बस, बस, मैल को, रहने दो अब अपना सैम-चरित्तर ! दुरगुली पंडत्याण को तुमने समझ क्या रखा है? ... जरा बखत बिलमाने को हंसी-ठट्ठे से बोल देती हूं, कि अरे चार दिन की अब जो [illegible] जिन्दगानी है, उसे हंसी-खुशी से काट ही देना है, तो तुम धौलछीना

के बिना गुसांईं (मालिक) के सांड लोग दुरगुली को ... की ही तैयारी करने लगते हो ? ... मैल को अपने अखंडित-बर्मचर्य वाले सेमावतार को अपनी भानावतारणी (गोपुली में भाना का अवतार होता था) गोपुली के लिए ही संभालकर रखे रहो -- दुरगुलि पंडत्याण तो ऐसे चोर-चमार बर्मचर्य पर थूक के छोड़ देती है । ...."9

जब पंडिताइन हरकसिंग को बुरी तरह से फटकार देती है और उसका पानी उतार देती है, तब वह " पंडित्याणी स्यूनारी , नर के ठट्ठे में देवों का इन्सल्ट करती है ? " कहकर डंगरियों की तरह अभुवाना शुरू कर देता है, तो पंडिताइन की भैंस भड़क उठती है और उसमें वह लुढ़क जाती है, उसका दूध फैल जाता है । तब हरकसिंग हड़बड़ी में पंडिताइन को उठाने के लिए उसकी कुहनी के स्थान पर बाएं स्तन को पकड़ लेता है । पंडिताइन हरकसिंग के मुंह पर थूक देती है -- " थू पापी " । उस समय गोपुली काकी वहां अचानक आ जाती है और इस विचित्र दृश्य को देखकर ठट्ठा करती है । तब पंडिताइन गोपुली को भी खरी-खरी सुना देती है --

" चुप रौ , गोपुली । -- संभलकर खड़ी होती हुई दुरगुली क्रोध से कांपती हुई बोली -- " ले जा , अपने इस हरामी मां के मुस्यार सांड को , और अपने ही साथ खिला खूब कुस्ती । मैल को , इस हरामी का सत्यानाश हो जाए , कहां से सबेरे सबेरे पिचाश (पिशाच) जैसा मेरे पटांगण में आ गया । दरे , इसकी जनेऊ पत्थर पर रह जाए , इसका यह सांड शरीर का फलिया गैर के मसाणघाट पहुंच जाए, नंदादेवी के मंदिर की सांड जैसी डुक्क मार-मार कर मेरी पंगुरी हुई चौंरी को बिछुरा दिया । हट्ट हरामी । तेरी "हिंगोर्त-छोर्त " की ऐसी-तैसी मारूं -- तमाम दूध की छलरफोक कर दी । अब मैं तेरी गति में दूद कहां से लगाऊं ? ठैर , मस चोट्टे , अभी दातुली से चीरती हूं तेरी जतिया जैसी गरदन को ।"10 दुरगुली दातुली लेकर हरकसिंग को मारने दौड़ती है, पर गोपुली बीच-बचाव करके उसे रोक लेती है ।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, वह दुरगुली पंडिताइन के चरित्र को उजागर करती है। उसकी जबान पर सरस्वती है। बात-बात में गालियां बकती है। किसीकी शेह-शरम नहीं रखती। वह निर्भीक और नीडर भी है। हरकसिंग सैमराजा का डंगरिया है। गांव के लोग ऐसे लोगों से बहुत भय खाते हैं, परन्तु दुरगुली उसकी भी ऐसी-की-तैसी कर देती है। गोपुली को भी खरी-खरी सुना देती है। वह थौलछीना में स्यैंगिरी [दायण] भी करती है। उसकी इस दर्पोक्ति में वाकई दम है — " आधी थौलछीना मेरे ही हाथों से बाहर निकली है। " [11] यह भी एक अनुभव-सिद्ध बात है कि दायणें प्रायः मुंहफट होती हैं। उनकी बातें प्रायः मरदों जैसी होती है। मरदों वाली गाली बोलने में भी वह किसीका लिहाज नहीं रखती।

" बोरीवली से बोरीबन्दर तक " उपन्यास में रामास्वामी नामक एक मद्रासी पात्र आता है। उपन्यास के नायक वीरेन को वह "साहिब" बोलता है। तब वीरेन कहता है कि क्या मैं तुमको साहब जैसा लगता हूं। फिर वह उसको उसका नाम भी पूछता है। उस संदर्भ में रामास्वामी का जो कथन है वह देखिए —

" आदमी का कपड़ा केवल "आउट-फिटिंग" होता, उसका "रियल" परसनैलिटी " उसका चेहरा होता। हम तुमेरे चेहरे को "रीड" किया, आप बड़ा खानदान का आदमी होना मांगता। ... हमारा नाम, रामा-स्वामी। येस ब्रदर आई केन टाक इन इंग्लिश वेरी वेल। हमारे फादर का नाम मुत्तु स्वामी। बट, तुम अमेरे से हिन्दी में बात करना। हम एक-दो महीना का बाद हिन्दी का परीक्षा में बैठने को मंगता। हम हिन्दी का आजकल अधेअद्वेन ... क्या कहता उसको ? " स्टडी " को हिंदी में क्या होता ? " [12]

यहां पर जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह किसी दक्षिण भारतीय व्यक्ति के अनुरूप है। सभी दक्षिण-भारतीय लोगों को प्रायः मद्रासी कहते हैं। ऊपर जो भाषा का टोन है वह मद्रासियों जैसा ही है।

इसी उपन्यास में मुंबई के मुंगरापाड़ा के युसुफ दादा का चरित्र मिलता है । दादा नूर को एक अड्डे से उठा लाये थे और नूर भी दादा को चाहती है । वस्तुतः यह नूर पहाड़ी प्रदेश की रेवा नामक युवती थी और ~~स्थिति~~× स्थितियों की मजबूरी ने उसे वेश्या के अड्डे तक पहुंचाया था । दादा को जब दो साल की जेल हो जाती है, तब वह फफक-फफक कर रो पड़ता है और नूर से कहता है -- "कुसूर मेरा है । इतना बंदोबस्त भी तो मै नहीं कर सका कि मेरे बाद भी तुम अपने दिन गुजार सको । रोटी जिन्दगी की सबसे बड़ी जरूरत है, नूर । ... मुझे अफसोस है कि मजबूरी की हालत में तुम्हें मै लाया था, मजबूर ही छोड़ जाऊंगा ... मैं अपना फर्ज पूरा न कर सका, नूर ।" [13]

नूर जब कहती है कि वह कैसे गुजर-बसर करेगी । तब दादा कहता है -- "यही तो गम है नूर । ऐसा लगता है, जैसे कोई मेरे कलेजे को चीर रहा है । कोई ऐसा रिश्तेदार भी नहीं, जिसे तुम्हें सौंप सकूं । मुंगरापाड़ा तो नंगों की बस्ती है । आदमी जिस्म से नंगा हो तो उतना बुरा, उतना खतरनाक नहीं होता, नूर जितना दिल से नंगा हो जाने पर होता है । स्वामी, डिसोजा, दुःखहरन ... किसी पर यकीन किया जा सके, ऐसा कोई नहीं । अलीबख्श अब पैसेवाला हो गया है, पैसेवालों की नीयत कोए की आंख होती है । ... किस्मत तुम्हें कहीं भी ले जाए, अपने हाथों से शैतान के मकबरे में दिया मैं कैसे जला सकता हूं ?" [14]

उपर्युक्त उदाहरण में दादा की जो भाषा है उससे उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । ऊपर से खूंखार दिखने वाला यह ~~शख~~ शख्स भीतर से कितना मोम है । वस्तुतः इसे कहते हैं किसी पात्र का चरित्र के रूप में उभरकर आना । यही तो उपन्यासकार की कला है । पात्र, पात्र रहे तो कुछ नहीं, वह चरित्र में तब्दिल होना चाहिए । और मटियानीजी यह कर सके हैं उसमें उनकी भाषा-शक्ति का योगदान कम नहीं है ।

"किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" की केलेवाली गंगूबाई को एक वहशी-सा आदमी पूछता है -- "शुं भाव छे ?" (क्या भाव है ?)

उस मनचले आवारा आदमी को गंगूबाई बुरी तरह से झिड़क देती है — " किसका भाव पूछता रे ? मेरा या केले का ? चौपाटी का केलेवाली समझा क्या ? घर उपर अपनी माँ-बहन का भाव पूछ जाके । ... शुं भाव छे ? ... हलकट ... केलेवाली की आँखों में एक अजीब घृणा का भाव उभर आया था । कुछ संयत होने पर , वह फिर हंस पड़ी — जैसे कुछ हुआ ही न हो । हाथ आगे बढ़ाती बोली — " हम गरीब लोग की इज्जत को भी लोग केला ही समझते हैं । ... भाव पूछते फिरते हैं । बिच्छू -सरीखा डंक मारते हैं । समझते हैं , केलेवाली केले बेचने के लिए हंसती है , तो जैसे अपनी इज्जत की भी "बिजनेस" करने को देखती है । थू ... क्या हलकट लोग ... गरीब में की माँ-बहन को कमाठीपुरा की रंडी समझते हैं ।" 15

उपर्युक्त उदाहरण में गंगूबाई का जितना कथन है उसमें उसकी जो भाषा है उससे उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । गरीब होते हुए भी उसे अपनी इज्जत प्यारी है और कोई यदि उसे हल्की नज़र से देख जाए उसे उसकी खुद्दारी बरदाश्त नहीं क र सकती ।

तो चरित्रगत भाषा का यह उदाहरण इसी उपन्यास से देखिए — " करसन , इससे तुम्हें क्षणिक ग्लानि हो सकती है , पर मेरा शेष जीवन सुखी हो जाएगा । ... मेरे असीम सुख के लिए , तुम अपनी क्षणिक दुविधा की बलि देकर तो देखो ... तुम पहले पुरुष हो , जिसे मैं अपनी सम्पूर्ण आस्था से समर्पण करने जा रही हूं ... मैं तुम्हें नारी-पुरुष के मिलन का चरम सुख दूंगी । ... तुमने नारी का आदर्श रूप ही देखा होगा , उद्दाम रूप नहीं देखा ... तुमने नारी का वात्सल्य ही देखा है , उसका रमणशील प्यार नहीं देखा ... आज तुम वह सुख पा सकोगे , जिसकी प्राप्ति के विचार मात्र से बड़े-बड़े मनस्वियों का धैर्य स्खलित हो जाता है ।" 16

परन्तु कृष्णकुमार (करसन) नर्मदाबेन को झटककर खड़ा हो जाता है और जाते-जाते नर्मदाबेन से कहता जाता है —" सोचता हूं, सिर्फ निर्णय ही मेरा होता ... तो मैं उसे बदल सकता था ... पर

अपनी जो आस्था है , उसे नहीं बदल सकता । मैं मानता हूं , नारी अपने काम्य रूप में भी दुर्निवार-सौन्दर्य बिन्दु लगती है , पर वह बिन्दु सही रेखा पर होना चाहिए । ... नारी के शरीर में यों अपवित्र कुछ भी नहीं । ... मुझे तो आपके वस्त्रहीन शरीर से संगमरमर की ऐसी मूर्ति का अहसास हुआ , जिस पर धुन्ध और मैल की पर्त बैठ गई हो ... मेरे कदमों को डिगा सके , मुझे आदर्श से च्युत कर सके ऐसी कोई नवीषता उसमें नहीं ... ऐसा ही शरीर मेरी मां का , मेरी बहन का भी हो सकता है और मेरी प्रेयसी का भी — अब आप मेरा निर्मम× निश्चय जान चुकी होंगी ? ... हां , जाते-जाते और इतना कहना चाहता हूं ... जिस रमणशील प्यार का हवाला आप दे रही थीं , वह उपलब्ध हो चुका ... और मैं आपसे आशीर्वाद चाहूंगा ।" 17

इस पर बड़े संतप्त-स्वर में नर्मदाबेन पूछती है कि वह भाग्य-शालिनी कौन है , तब कृष्णकुमार कहता है कि — " गंगा ... आपकी नौकरानी ... सिर्फ इसलिए बता रहा हूं कि आपने भी अपने जीवन की गोपनतर बातें मुझसे कही हैं । मैं चाहूंगा , आप भी अब अपनी मनोभूमि को सही-सही रूप दें । ... बिन्दु कितना ही सुंदर , कितना ही आकर्षक हो , अभीष्ट रेखा से बहुत परे या बहुत टेढ़ी-मेढ़ी रेखा पर नहीं होना चाहिए ।" 18

ऊपर के प्रथम उद्धरण में सेठानी नर्मदाबेन के चरित्र के लिए मटियानीजी ने बहुत सही भाषा का प्रयोग किया है । नर्मदाबेन में काव्य-साहित्य के संस्कार हैं । कृष्णकुमार को चाहने के पीछे भी यही कारण है । एक सुशील और संस्कारी नर्मदा एक विपुल-वासनावती नारी कैसे हो जाती है , उसकी चर्चा हम पूर्ववर्ती अध्याय में कर चुके हैं । कृष्ण-कुमार से यहां जो उसका प्रेम-निवेदन है वह उसकी अतृप्त प्यास है । यह एक अतृप्त-कामुम नारी का निवेदन है । उसने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वह उसके चरित्र के बिलकुल अनुरूप हैं । दूसरे और तीसरे उद्धरण में कृष्णकुमार अपनी बात करता है और जिन शब्दों में वह अपनी बात रखता है वह उसके चरित्र के अनुरूप है । कवि है ,

अतः शब्दों का प्रयोग चुन-चुनकर करता है । नारी के काम्य-रूप को दुर्निवार सौन्दर्य बिन्दु कहना और साथ ही यह जोड़ना कि वह बिन्दु सही रेखा पर होना चाहिए , उसके काव्य-संस्कारों को व्यंजित करता है । उसमें चारित्रिक-विवेक कूट-कूट कर भरा है । नर्मदाबेन के वस्त्र-हीन शरीर को संगमरमर की मूर्ति कहना और फिर कहना कि ऐसी मूर्ति जिस पर धुन्ध और मैल की पर्त बैठ गयी है । और फिर बहुत ही सांकेतिक ढंग से यह बताना देना कि वह किसी और को प्यार करता है । नर्मदाबेन के लिए "आप" सर्वनाम का प्रयोग भी उसके संस्कारों को व्यंजित करता है ।

मटियानीजी ने पहले "सर्पगंधा" उपन्यास लिखा था , उसका परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण "नागवल्लरी " है । इसमें लेखक ने डोम जाति के कृष्णामास्टर और एक विधवा ठकुराइन के अंतर्जातीय विवाह को कथा का केन्द्र बनाया है । कृष्णा मास्टर जाति से शूद्र हैं , परन्तु कर्म से ब्राह्मण हैं । प्रयाग विश्वविद्यालय का एक तेजस्वी तारला । उनकी इस बौद्धिक प्रतिभा और सौम्य पौरुषय व्यक्तित्व से आकर्षित होकर ही गायत्रीदेवी उनसे विवाह करती है । यथार्थ-परिवेश पर उकेरा गया यह एक आदर्शवादी उपन्यास है ।

कृष्णा मास्टर के चरित्र के लिए निम्नलिखित उद्धरण देखिए :

"जब तक कृष्णा मास्टर हाथ-पांव धो धो , कमीज डालकर पास में आए , जनार्दनलाल भ्रे पुस्तकें देखता रहा और वहां पर "संस्कृति के चार अध्याय" जैसी पुस्तक को देखकर उसे विस्मय हुआ । उसने अपना मंतव्य प्रकट किया, तो कृष्णा बोले , " देखिए , लाल साहब , जहां तक मेरा सवाल है -- निहायत साधारण और सादा किस्म का आदमी हूं । एक सामान्य अध्यापक के रूप में अपना समय व्यतीत करता हूं । कुछ पढ़ने-चढ़ने का शौक है । प्राचीन इतिहास , धर्म और दर्शन में ज्यादा रूचि रखता हूं । एम.ए. , बी.टी. मैंने किया । यहां से तो सम्भव न था । इलाहाबाद में पत्रेxxxx पोलिटेक्निक में मामाजी थे हमारे -- अब तो उनका देहान्त हो चुका -- उन्हीं के आश्रय में पढ़ना सम्भव हुआ ।

यों ट्यूशनें भी करता रहा । यहां , दुबारा अपने पैतृक गांव आने के बाद पहले से ज्यादा प्यारा लगा गांव । इतिहास और धर्म के अध्ययन ने स्मृतिजीवी बना दिया है । मन में आया कि यहीं पूर्वजों की थाती संभाली जाए । बस मुख्तसर किस्सा इतना-सा है । और ये तो शायद आप भी जानते हैं कि इस किस्से में थोड़ा-सा इज़ाफा गायत्रीजी के आने से हो गया है ।"[19]

लाल को इस बात का अहसास हुआ कि इस व्यक्ति के अंदर परितोष भरा पड़ा है । कृष्णा मास्टर का जो व्यक्तित्व है , एक विनयी व्यक्ति की जो उसमें स्निग्धता है और आंखों में जो एक जिज्ञासा की चमक है । इन सबको यहां लेखक ने शब्दों के कुछ रंगों से भर दिया है । इलाहाबाद जैसे शहर से वापस आना । आजकल जो व्यक्ति एक बार शहर पहुंच जाता है , पुनः अपने गांव वापस नहीं लौटता । हमारे यहां बड़ा विचित्र-सा व्यापार चल रहा है । गांव के लोग शहर , शहर के महानगर और महानगर के लोग यूरोप-अमेरिका जाना चाहते हैं । इस "सुजलाम् सुफलाम " धरती पर रहना कोई नहीं चाहता । कृष्णा मास्टर जैसे लोग इसमें अपवाद हैं ।

"जलतरंग" उपन्यास ही "मायासरोवर" उपन्यास है । इस विषय पर लेखक एक कहानी भी लिख चुके हैं — कोहरा । प्रत्यक्षतः इस उपन्यास में दो ही पात्र हैं — मिसेज खोसला और बी.के. । नैनिताल में यों ही घूमते हुए ये दोनों मिल जाते हैं और कुछ दिन एक-दूसरे की सोहबत में रहते हैं । "जलतरंग" उपन्यास हमें इस बात की प्रतीति कराता है कि — " मनचीता हम जी नहीं पाते , मनचीता हम पी नहीं पाते ; जो जीते है जीने की मज़बूरी है , जो पीते हैं पीने की मज़बूरी है । " जीवन की संपूर्णता की प्रतीति कराने वाले तीन व्यक्ति मिसेज खोसला के जीवन में आते हैं — पी.के. , सी.के. और फादर परांजपे । और अब नैनिताल में वह मि. बी.के. के साथ घूम रही है । इस पूरे उपन्यास में मिसेज खोसला बातें करती हैं फादर परांजपे की । मिसेज खोसला अपनी रीती और रेत हो रही जिन्दगी

में कुछ अर्थपूर्णता की टोह में निकली थी । एक स्थान पर वह मि. बी.के. को कहती है -- " मैं यहां आयी इस इरादे से थी कि औरत होने का जितना भी अहसास मुझे है, उसे अब आखिरी बार पूरी-पूरी निश्चिंतता में जी सकूं । मैं जान-बूझकर लापरवाही बरतती हूं और मुझे इस बात की अपेक्षा लगातार रहती है कि मेरे शरीर की जद में आकर पुरुषों की आंखों को कुछ देर थम जाना चाहिए । अपने लगभग अधेड़ के जिस्म पर जोंकों की तरह आ चिपकने वाली नज़रों को मैं बड़े गौर से देखती-- बल्कि तकरीबन उलटती-पलटती रहती हूं ।" 20 मिसेज खोसला का देह आकर्षक है । उसका आभिजात्यपूर्ण स्वभाव और अपरिचय के बावजूद परिचितता से की विलक्षणता से कौंधती हुई आंखें किसीको भी आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त है । एक स्थान पर मिसेज खोसला कहती है --

" अब शायद तुम मुझे बहुत वल्गर कहोगे, अगर मैं यह कहूं कि मेजर साहब के साथ सो चुकने के बाद मुझे हमेशा एक अजीब-सी बेचैनी और रिक्तता महसूस होती है । सेक्स का एक लंच या डीनर की तरह रूटीन जिन्दगी का हिस्सा बन जाना, सेन्सिटीव और जीवन के ज्यादा गहरे "विज़न" या तकलीफ से गुजरते हुए को ऐसा "सेक्स" कभी तृप्त नहीं करता । मुक्त कर देने की हद तक तृप्त । यह सच है बी.के. कि सेक्स में सिर्फ तृप्ति ही नहीं, मुक्ति का स्वाद भी होता है ।" 21

मिसेज खोसला का वह कोहरा-सा चरित्र देखिए --" तुममें (बी.के. में) बच्चों का-सा "ईगो" भरा हुआ है । तुम्हारी जगह कोई शातिर होता, तो नाराज हो जाने की जगह मुझे पटा लेने की कोशिशें करता । ... और नतीजा यह होता कि मैं इस वक्त यहां अकेली घूम रही होती और कब्रिस्तान के आसपास के इस सन्नाटे में मुझे अपना अकेलापन निगल रहा होता ।" 22 इसके उत्तर में बी.के. कहता है -- "मैं काफ़ी शर्मिन्दगी महसूस कर रहा हूं, मिसेज खोसला । मुझे अब यह साफ-साफ महसूस होने लगा है कि मेरा मानसिक स्तर आपके जैसा नहीं है । मैं, शायद, भावुक ज्यादा हूं । मुझमें संतुलन नाम की चीज़, शायद, है ही नहीं ।" 23

तब मिसेज खोसला एक पेड़ के तने से टिकती हुई बोलती हैं -- " सो आई एम ... मगर उस हद तक का असंतुलन मुझे न मालूम क्यों गलत लगता है, जहां से संभला नहीं जा सके। तुम समझते होगे, बी.के., मैं "मोरलिस्ट" बनने का स्वांग भरने की कोशिश करती हूं। यों यह गलतफहमी अगर हो जाए, तो इसे बिलकुल स्वाभाविक समझूंगी। कोई औरत फिजीकली ■ अट्रेक्ट करने की कोशिश भी करे; उसका बिहेवियर भी काफी खुलेपन का हो और फिर वही औरत एक साधारण-से किस्म के बर्ताव पर एतराज भी करने लगे -- देखा जाए तो यह सब "पैराडाक्स" के अलावा कुछ नहीं। मगर शायद सारी समस्या यहीं पर से शुरू होती है। अपने व्यवहार और चरित्र के तमाम-तमाम विरोधीपन के बावजूद, जिन्हें अपने नैतिक होने का एहसास घेरे रहता है -- एक निहायत अमूर्त किस्म की तकलीफ उनकी जिन्दगी की नियति बन जाती है। ओफ्फोह, मेरी जुबान में न मालूम कितना फालतूपन भर गया है। दो-चार फुलस्केप बोल जाने पर भी जो एक छोटी-सी बात कहना चाहती हूं, वह ज्यों की त्यों "चुइंगम" की तरह तलवे से चिपकी हुई-सी महसूस होती है। तुम्हें बहुत ज्यादा बोरियत तो महसूस नहीं होने लगी है, बी.के. ?"24

मटियानीजी के उपन्यास "आकाश कितना अनंत है" में मिस गीता पाल, श्रीमती शर्मा, श्रीमती सक्सेना तथा मिस जायसवाल आदि कालिज की अध्यापिकाएं हैं। उनके हंसी-मजाक और पारस्परिक खींचाई का एक चित्र देखिए :

" अरे, मिस जायसवाल। आप भी किस फेर में पड़ गईं। श्रीमती सक्सेना बोलीं -- " किसी शायर ने जो कहा है कि 'औरत की उम्र पर न जाइए' यों ही नहीं कहा है। रह गई मिस पाल की आंखों में गंभीरता के आ जाने की बात। जिस फ्रेन्च लेखक के उपन्यास का जिक्र मैं आप लोगों से कर रही थी, उसमें लेखक मिसेज मार्था की मनोदशा के बारे में कहता है कि प्रेम में विफल होने के बाद इस तरह

की रहस्यमय गंभीरता औरतों को अपने से कम उम्र के लोगों की ओर आकर्षित करती हैं । ऐसे में वह पौरुष की जगह ऐसी कश्र कोमलता को पसंद करने लगती हैं , जिसे वे संरक्षण दे सकें ।"[25]

" यानी मां बनना चाहती हैं ? " श्रीमती शर्मा ने बात साफ की । (श्रीमती सक्सेना कहती है) " जी नहीं , बल्कि ऐसे प्रेमी की तलाश में रहती है , जिसे मां की तरह प्यार कर सके । मैंने आप लोगों को बताया नहीं था कि उस उपन्यास की सैंतीस साला नायिका का अंतिम प्रेम एक उन्नीस वर्ष के अनुभवहीन लेखक से हो जाता है और कमाल यह देखिए , अगले साल ही वह मां बन जाती है और कुछ ही अरसे के बाद दोनों में तलाक भी हो जाता है ।" [26]

यहाँ अध्यापिकाओं की यह जो नोंक-झोंक है , उस पर एक एक अध्यापिका ने ही सही टिप्पणी की है —" यहां पुरुष समाज से भी ज्यादा रूढ़िवादी औरतों की जमात है । अरे हम लोगों के कालेजों के ही वातावरण को देख लीजिए । मुझे याद है , जिस साल मिस पाल के साथ ट्रेजडी हुई थी , इनके बारे में ज्यादा इर्रेलिवेंट और सख्त बातें इनकी "कलीग्स" ही करती थीं ..." [27]

इसी उपन्यास के कामरेड सूरज की निम्नलिखित बातों को देखिए :" तुम्हें (राजशेखर) मेरे नास्तिक का मखौल उड़ाने का अगर सिर्फ मजा आता हो , शेखर तो कोई बात नहीं — लेकिन बाधा महसूस होती है , तो मानूंगा कि यह गलत होना है । बेसिकली इस प्रिंसिपल को मानता हूं कि आप नास्तिक हैं या आस्तिक , यह सब बेमानी है । सवाल है यह कि आदमी के प्रति , समाज के प्रति — बल्कि कहूंगा कि जानवरों तक के प्रति आपका रुख समझदारी और जिम्मेदारी का है , या नहीं , "वैल्यू" सिर्फ इस चीज की है । "टवईस सैनकाइंड " अगर आपका रवैया गलत है , तो नास्तिक या आस्तिक होना , सिर्फ एक दिमागी अय्याशी या महज बेवकूफी-भर है । इंसान को अगर आप खुदा की औलाद मानते हों , तो समझदारी कहत× कहती है कि खुदा को तो अब मरहूम वालिद की जगह पर समझो और

इंसान को ही मानो कि सारी रिश्तेदारी अब इसीसे है । ... हालांकि ये कुबूल करता हूं कि कहीं कोई सुपर-पावर है , लेकिन चीजों के बारे में खुदसई से ज्यादा , आदमी कर भलमनसाहत का करिश्मा मानते हुए ज्यादा खुशी महसूस करता हूं । खुशी और आस्था । " 28

उपर्युक्त कथन से कामरेड सूरज का जो व्यक्तित्व है , वह उभरकर आया है । उनके समाजवादी सरोकार और मानवीय आस्था यहां उजागर हुए हैं । मार्क्सवादी प्रायः सुशिक्षित होते हैं , अतः उनकी भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का आना स्वाभाविक होता है ।

मिसेज मैठाणी भी इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण चरित्र है । यहां उनकी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है --

" तुम लोगों का प्यार मुझ बुढ़िया को गाफिल न कर डाले । मैं तो इसे सिर्फ संजोग कहना चाहूंगी । पहले चन्द्रशेखर के साथ और बाद में कभी अकेले , कभी फादर परांजपे के साथ जंगल के एकान्तों में बहुत घूमी हूं । बहुत ज्यादा । मुझे प्रकृति ही मां है । जंगल के सोतों ~~xxx~~ का जल पीते जाने मुझे क्यों मां का दूध पीने की अनुभूति होने लगती है । प्रकृति जड़ नहीं गीता । ... और प्रकृति में सिर्फ पेड़-पौधे , जंगल-पहाड़ , नदियां-नाले और हवा-पानी ही नहीं है -- कुछ और भी है , जो हमसे भी बेहतर देखता है । हमसे कहीं अनंत बेहतर चीजों को रचता है । जो अपने जीवन को इस सबसे जोड़ नहीं पाते , उन्हें यह सब न महसूस हो सकता है और न दिख सकता है । हाय , बोलते-बोलते फादर परांजपे होने लगी । अभी परसों-नरसों गई थी , तो उनके पास इलाहाबाद की कोई मिसेज खोसला बैठी थीं । वह भी , शायद , कभी पहले यहां के संत मेरी कानवेण्ट में पढ़ चुकी है । बुड्ढा ऐसे देख रहा था , जैसे च्यवनप्राश खाता जा रहा हो । च्यवन ऋषि और अश्विनीकुमारों वाली "मायथोलोजिकल स्टोरी" तो तुमने पढ़ ही रखी होगी ? " 29

मिसेज मैठाणी के अपनी कोई संतति नहीं है । गीता पाल कहती है कि मगर आपने सचमुच में मां का हृदय पाया है । राजशेखर बहुत भाग्यशाली हैं , जो आप तक पहुंच गए । इस बात के प्रत्युत्तर में मिसेज

सेठाणी उपर्युक्त कथन कहती हैं । उनके इस कथन से उनकी प्रौढ़ता , जीवन का गहरा अनुभव , उनका वात्सल्यपगा माँ का हृदय , उनका प्रकृति-प्रेम , उनकी आध्यात्मिकता और बहुश्रुतता का परिचय पाठक को मिलता है ।

"चन्द औरतों का शहर " धर्मान्तरण की सामाजिक एवं मानसिक अवधारणा को उकेरने वाला एक पर्वतीय शहर की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है । यह उपन्यास उन चन्द औरतों का उपन्यास है जिसे पाठक मिस बलवीर उर्फ चारुलता तांबेकर , मिस गोम्स , मिस कनिष्ठा त्रिपाठी , मिसेज दुबे , मिसेज त्रिपाठी, मिसेज त्रिपाठी , मिसेज मार्था , बेगम नसरीन उर्फ बेगम तुगलकाबाद आदि के नाम से जानते हैं ।

श्रीमती बलवीर इस शहर के संदर्भ में कहती हैं -- " यह शहर क्या किसीके बाप का है ? , बेगम नसरीन ? यह मोरली सिर्फ हमारा शहर है , हम चन्द औरतों का शहर । जिनमें कुछ यहाँ मौजूद हैं -- बाकी की शहर में मौजूद होंगी । ... बिना हम औरतों के इस दुनिया में आदमजात का ही कोई वजूद नहीं , बेगम साहिबा ।" [30] तो मिस गोम्स के शब्दों में यह शहर --" दर असल यह शहर , जिसमें हम रहते हैं , समुद्र के बीच एक टापू की तरह आत्मजीवी हो चुका है । यहाँ अगर आप कभी अपनी जिन्दगी की ऊब और अकेलेपन से भागना चाहेंगी , तो दो ही तबके आपको पार्टिसिपेटिंग मिलेंगे । एक जमादारों का , कुलियों और जरायमपेशा लोगों का और दूसरा पढ़े-लिखे जरायमपेशा लोगों का -- " विशल सर्किल " । सफेदपोशी हमें चिले तबके में शामिल नहीं होने देती , नहीं तो मेरा अन्दाजा है , कि वहाँ ज्यादा सच्चाई है ।" [31] उपर्युक्त दोनों कथन उन-उन महिलाओं के चरित्र को उद्घाटित करने वाले हैं । मिसेज बलवीर रायबहादुर भगत-राम की पुत्री है । अतः उसके व्यक्तित्व में एक प्रकार का दबंगपना और

बड़बोलापन झलकता है । मिस गोम्स के कथन से उसका बुद्धिजीवी व्यक्तित्व और निम्न तबके के साथ उसकी जो सहानुभूति है , उसका अहसास होता है ।

डी.डी. अर्थात् मि. धरणीधर त्रिपाठी इस उपन्यास के एक अत्यन्त तेजस्वी और मेधावी व्यक्तित्व वाले पुरुष हैं । पाश्चात्य विद्या की चकाचौंध में अपनी युवावस्था में डी.डी. मिस मार्था के आकर्षण के कारण ईसाई हो जाते हैं । परंतु ढलती उम्र के उतरते खुमार में जब मार्था xx के यौवन-वारुणी का नशा कुछ उतरने लगता है , तब वे अपराध-बोध से भर उठते हैं और अपने एक मित्र हरि पण्डित से कहते हैं -- " मेरे जीवन के , धर्म के संस्कार भिन्न हैं और स्मृति के वृत्त भी -- मेरी श्रुति गिरजे xx की घण्टियों से नहीं , शंख-ध्वनि से स्फूर्त होती है । मेरा पंचभूत बाइबल-पाठ से नहीं , विनायक-वंदना से विभोर होता है । मरियम भी एक युगपुरुष की माता है । किन्तु मेरी आत्मा , देह , तो अष्टभुजा की स्तुति में ही आकुल और आंदोलित भी होती है । तृप्ति भी । हरिभाई , धर्म और संस्कार , आदमी के रक्त में संचरित होते हैं ।" [32]

डी.डी. अपनी उत्तरावस्था में पुनः हिन्दू संस्कारों को ग्रहण करते हुए और अपराध-बोध के साथ जीते हुए-से प्रतीत होते हैं । परन्तु उसमें मिसेज मार्था की स्थिति स्थिति बड़ी विचित्र होती है । वह ईसाई है , परन्तु उसमें एक पत्नी , एक औरत का दिल भी है । उसने डी.डी. को तहेदिल से चाहा है । उपन्यास में एक स्थान पर वह कहती है --" क्योंकि मैं जानती हूं कि मेरा बदलना अचानक का नहीं है । यह एक लम्बी लड़ाई के बाद हथियार डालने वाले सिपाही का हारना है , डी.डी. मगर मुझे तुमने नहीं , तुम्हारे "रिलीजन" ने नहीं -- प्रभु ईसा की करुणा ने हराया है और मैं महसूस करती हूं कि मैं प्रभु की शरण में हो xxxx सकी हूं । तुम्हें कुछ याद है , डी.डी. ? अभी तीन रोज पहले तुम जब गाय खरीद लाये ? मेरे

चेहरे का तमतमा उठना तुम्हें साफ-साफ दिख गया होगा ? मेरी वेदना न दिखी होगी कि इस अभागे ब्राह्मण को अपना गऊदान तो नहीं सूझा है । ... तुम ये क्यों भूल जाते हो , धरणीधर पंडित कि आफ्टर आल आई एम ए वुमन एण्ड वाईफ बोथ । ... मैं तुमसे लड़ सकती हूं , तुमको त्याग नहीं सकती । ... उस रात मैं ठीक प्रभु के चरणों के नीचे सोई ... और स्वप्न देखा कि तुम मुझे त्याग चुके हो । प्रभु के चरणों में से धूल के कुछ कन गिरे और मैं जाग उठी । मुझे लगा कि प्रभु के चलने की आवाज़ भर गई है मेरे भीतर । एक-एक क्षण यही पुकारता है कोई कि " यु हेव बीन क्रुअल । यु हेव बीन क्रुअल । .... और डी.डी. क्रिश्चिनिटी करुणा है — क्रुआलिटी नहीं । मैंने प्रकट×क्रिकट× तय किया , मगर प्रकट-प्रकट×करनेकरनेवक्त लग गया , धरणी ।" 33

उक्त कथन में जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह बिलकुल मार्था के चरित्र के अनुकूल है । उसमें उसकी भक्ति , स्त्रीत्व , करुणा , उदारता आदि के भाव प्रकट होते हैं । यह भाषा ही बता देती है कि उसकी वक्ता कोई ईसाई महिला है । अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी बहुत सहजता से हुआ है ।

"बावन नदियों का संगम " वेश्या-जीवन पर आधारित उपन्यास है । सरकार वेश्यालय बन्द करने की बात करती है तो वेश्याएं अंततः राजनीति की ही शरण में जाती हैं । वेश्याएं चाहती हैं कि उनका जीविकोपार्जन का रास्ता बन्द न कर दिया जाए । अतः वे एम.एल.ए. वगैरह की भी खुशामद करती हैं । वेश्याओं की मुखिया गुलाबबाई को जब पता चलता है कि इन्दिरा गांधी आनेवाली हैं , तो वे कहती हैं —" इन्दिरा का राज है जो सबको आश्चर्यचकित कर रहा है । इन्दिरा यहां आवेंगी तो हम जनियों के साथ थोड़ा ना बैठेंगी । मइया रानी है वहां की । वहां भी राज करती थी , यहां भी आयेंगीं तो राज रचेंगी । बड़े लोगों का क्या कहना । जिये भी लाख के मरे भी लाख के । फिर वे गांधीजी की बेटी है ।

साक्षात् देवी जानो । उनको तख्त से हटाने वाले को इन्च भर के कीड़े पड़ेंगे ।"[34]

यहां गुलाबबाई की जो भाषा है उससे निम्न-गरीब तबका श्रीमती इन्दिरा गांधी को कितना चाहता था उसकी×भ्रमित प्रतीति होती है । "मइया रानी", "जनियों", " इंच भर के कीड़े" आदि शब्द-प्रयोगों से गुलाबबाई का चरित्र सचमुच में उद्घाटित हुआ है ।

शैलेश मटियानीजी ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की लाचार-विवश दयनीय स्थिति को अनेक स्थानों पर उकेरा है । "एक मूठ सरसों" की देवकी भी ऐसी ही एक दुःखी नारी है । वह अपनी इस वि स्थिति को लेकर कफुआ पंछी को उलाहना देती है --

" कफुआ भाइ ' रे दुखियारी के दुख को क्यों बढ़ाता है रे निर्मोही ! तू भी तो मेरे मायके की दिशा से उड़ता आया है, तू नहीं ला सकता है रे भिटौली ? मगर चैत तो अभी आया ही नहीं है । खेतों में सरसों अभी पियराई नहीं है । तो कफुआ भाई रे इस रगते फागुन में ही अपनी देवकी बहना के कलेजे में कुरकाती जैसी क्यों लगाने लगा है रे ? जा भाई अपनी ठौर को लौट जा ... और जब चैत आयेगा तो चनौली के काफल वृक्षों से काफल बीनते हुए दिलीप पाज्यू को अतु रैन के आखर सुना देना कि सुन भाई कफुआ रे मेरी कथा सुन कथा हुड़र देता जा रे ।"[35]

यहां पर देवकी का एक-एक शब्द दर्द के खरल से घुटकर निकला है । पहाड़ी स्त्रियों की कथा-व्यथा कहने में मटियानीजी का कोई सानी नहीं है । यहां कफुआ पक्षी के माध्यम से देवकी अपनी पीड़ा व्यक्त करती है । मायके से "भिटौली" नहीं आयी है । उसके कारण उसे अपनी ससुराल में ताने-तिसने सुनने पड़ते हैं । यह सब यहां खूब गहरे दर्द के साथ अंकित हुए हैं । पहाड़ी स्त्रियां अपने परदेसी प्रियतम की याद में भी निरंतर तड़पती रहती हैं । ~~मत~~ " चौथी मुट्ठी" उपन्यास में उसका एक शब्द-चित्र देखिए :--" निर्मोही रे जब तूं जा रहा था इस सिलंगधौर की

घाटी में घास नहीं अंकुराई थी । बाज फल्याट के वृक्षा में पाल्यो नहीं फूटी थीं । बैरी रे जिस बेला तूं आंखों के तांबे के पैले जैसे भरके दीठ की ओर पीठ फिराके जा रहा था , इस सिलंगयोर बनखंड के वृक्षों में पक्षियों के घोंसले भी नहीं लग पाए थे । सुबारे तेरे पांवों की अंगुलियों के मछली के पफोटों जैसे चांदी की अठन्नी- चवन्नियों जैसे नखों को परदेस की पश्चिम दिशा की धूल ढांप रही थी ... बेशर्म एक छौना तेरी सूरत-मूरत का मेरी गोद में आ चुका है रे , बन आई हूं तो घर छूट गया है छौना । याद आती है उसकी , तो तेरी सूरत को हिया तरसने लगता है । सुबरन ... तुझे कौली घास पल्यो पक्षी छौनो और गाय की बाछी की सौं सपथ रे निर्मोही लौट आ । लौट आ मेरे सुबरन लौट आ ।"[36] यहां पहाड़िन विरहिणी नारियों की विरह-व्यथा अंकित हुई है ।

"बर्फ गिर चुकने के बाद " एबसर्ड शैली में लिखा गया उपन्यास है । उसका नायक स्त्री-वंचना का शिकार है । उसकी भाषा-सोच का एक उदाहरण देखिए —" अगर कभी आपने सिर्फ किसी एक स्त्री को अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में अनुभव किया है , तो आप जानते होंगे कि जब वह अचानक आपकेभीतर से हटती है , तब आप गूंगे की तरह होते हैं , जो नदी नहाते हुए डूबने लगता है और किनारे पर के लोगों को पुकारने के लिए सिर्फ एक भयाक्रान्त कंपकंपी के अलावा उसके पास कोई भाषा नहीं होती । अब यदि मैं कहूं - " कु-ति-या" — इसे अपने भीतर-ही-भीतर कहना , इसी तरह की कंपकंपी से गुजरना था , तो शायद आप मेरी बदहवासी को भाषा के स्तर पर समझने के आग्रह की हास्यास्पदता को कुछ कम होता हुआ जरूर पाएंगे ।"[37]

इस उदाहरण से नायक स्त्री-वंचना से किस क़दर आहत है और उसके कारण कैसे-कैसे शब्द उसकी जबान पर आते हैं , उसका चित्रण हुआ है । जिस स्त्री के द्वारा आप अंधे कुएं में धकेल दिए गए हों , अपनी विक्षुब्धता या बदहवासी में उसे "कुतिया" कहा जाना

अस्वाभाविक या अन्यायपूर्ण नहीं हो सकता ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं :--

§1§ पात्र-निर्माण में भाषा की अहम भूमिका होती है । पात्र अपनी भाषा लेकर आता है और वह भाषा ही उसे एक व्यक्तित्व प्रदान करती है । यथार्थ चरित्र-निर्माण के लिए पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग अनिवार्य है ।

§2§ प्रस्तुत अध्याय में हमने "हौलदार" के डुंगरसिंह , "चिट्ठीरसैन के नाथू हवालदार , "चौथी मुट्ठी" की मोतिमा और कौशिला तथा रतनसिंह डोंगरी , "हौलदार" उपन्यास की दुरगुली पंडिताइन , "बोरीवली से बोरीबन्दर तक " उपन्यास के रामास्वामी , युसुफ दादा ; "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " के नर्मदाबेन सेठानी तथा कृष्णकुमार ; "नागवल्लरी" उपन्यास के कृष्णा मास्टर ; "जलतरंग" या मायासरोवर" की मिसेज खोसला ; "आकाश कितना अनंत है " के श्रीमती सक्सेना , कामरेड सूरज , मिसेज मैठाणी ; "चन्द औरतों का शहर " के श्रीमती बलवीर , मिस गोम्स , डी.डी. उर्फ धरणीधर त्रिपाठी , मिसेज मार्था ; "बावन नदियों का संगम " की गुलाबबाई ; "एक मूठ सरसों " की देवकी तथा "बर्फ गिर चुकने के बाद " का नायक जैसे पात्रों की चर्चा उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में की है और इस निष्कर्ष तक पहुंचे हैं कि मटियानीजी पात्रानुरूप भाषा के प्रयोग में अत्यधिक सफल रहे हैं ।

§3§ मटियानीजी के उपन्यासों में हमें भाषा के विविध स्तर मिलते है , जैसे -- कुमाऊं प्रदेश के ग्रामीण लोगों की भाषा , नगरीय शिक्षित लोगों की [illegible] भाषा तथा मुंबई की बम्बइया भाषा ।

======= XXXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द टेकनिक आफ द मोडर्न इंग्लिश नावेल : पृ. 18 ।

§2§ द्रष्टव्य : आस्पेक्ट्स आफ द नावेल : ई.एम. फारस्टर ।

§3§ हौलदार : पृ. 31 ।

§4§ वही : पृ. 27 ।

§5§ चिट्ठीरसैन : पृ. 16 ।

§6§ चौथी मुट्ठी : §x एक मूठ आखर मेरे : भूमिका : पृ. 7 ।

§7§ वही : पृ. 1 ।

§8§ वही : पृ. 14-15 ।

§9§ हौलदार : पृ. 256-257 ।

§10§ वही : पृ. 257-258 ।

§11§ वही : पृ. 239 ।

§12§ बोरीवली से बोरीबन्दर तक : पृ. 31 ।

§13§ वही : 127-128 ।

§14§ वही : पृ. 128 ।

§15§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : पृ. 60 ।

§16§ वही : पृ. 94-95 ।

§17§ वही : पृ. 95 ।

§18§ वही : पृ. 96 ।

§19§ नागवल्लरी : पृ. 51 ।

§20§ जलतरंग : पृ. 16 ।

§21§ वही : पृ. 37 ।

§22§ मायासरोवर : पृ. 58-59 ।

§23§ वही : पृ. 59 ।

(24) मायासरोवर : पृ. 59 ।

(25) आकाश कितना अनंत है : पृ. 17 ।

(26) वही : पृ. 17 ।

(27) से (29) : वही : पृ. क्रमशः 17, 231, 251 ।

(30) चन्द औरतों का शहर : पृ. 160 ।

(31) से (33) : वही : पृ. क्रमशः 74, 98, 133-134 ।

(34) बावन नदियों का संगम : पृ. 230 ।

(35) एक मूठ सरसों : पृ. 95 ।

(36) चौथी मुट्ठी : पृ. 79-80 ।

(37) बर्फ गिर चुकने के बाद : 38 ।